



हिन्दी के गुप्त भूषण : कुमाउँनी लोकसाहित्य एवं साहित्य

नमन जोशी

(छात्र) हिन्दू कॉलेज, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत।

सारांश

कुमाउँनी बोली पहाड़ी उपभाषा की प्रमुख बोली हैं, जो उत्तराखण्ड के कुमाउँ क्षेत्र में काफी प्रचलित है, एवं जनभाषा के रूप में क्षेत्र का प्रतिनिधित्व भी करती हैं। सर् जार्ज ग्रियर्सन गुमानी पंत जी (सन् 1790-1846) को कुमाउँनी बोली का पहला कवि मानते हैं। कुमाउँनी लोकसाहित्य एवं साहित्य हिन्दी के गुप्त आभूषणों की भांति है जो स्वयं अधकार में रहकर हिन्दी की चमक बढ़ाने हेतु निरंतर अथक प्रयास कर रहे हैं। ये अवश्य सत्य है कि कुमाउँनी का अभिजात्य साहित्य हिन्दी की अन्य बोलियों के साहित्य की तरह इतना व्यापक नहीं है, परन्तु जिन कठिन एवं दुर्गम परिस्थितियों में इस साहित्य को लिखा और संरक्षित किया गया, वो स्वयं में अन्य बोलियों एवं भाषाओं के लिये प्रेरणास्रोत हैं। ये तथ्य अवश्य ही विचारणीय है कि जिस गुमानी को हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का पहला कवि होने का गौरव प्राप्त हो सकता था, उस गुमानी को हिन्दी साहित्य के चर्चित इतिहास के ग्रंथों में स्थान तक नहीं दिया गया और ये कहना भी गलत नहीं होगा कि कुमाउँ के विस्तृत क्षेत्र (चम्पावत, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, बागेश्वर, उधम सिंह नगर, नैनीताल) में अभिजात्य साहित्य की क्रांति लाने वाले गुमानी को हिन्दी साहित्य से पृथक और उपेक्षित रखा गया। जिस दौर में हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवि भोग विलासता का जीवन व्यतीत कर रहे थे, उसी दौर में कुमाउँ के कृष्णा पाण्डेय जैसे कवि अंग्रेजी सत्ता का खुला विरोध कर लोकभाषा में जनता को जागरूक करने का कार्य भी कर रहे थे। इसके अतिरिक्त कुमाउँनी बोली के पास वो शब्द सम्पदा मौजूद है, जो हिन्दी भाषा के उत्थान में मदद कर सकती है। ऐसे में हिन्दी से ये उम्मीद अवश्य लगाई जा सकती है कि वो कुमाउँनी कि शब्द सम्पदा को गृहीत कर अवश्य ही अपनी बोली को भाषा में सम्मानित स्थान देगी।

मूल शब्द : गुमानी पंत, कुमाउँनी, लोकसाहित्य, पहाड़ी उपभाषा, समावेशीकरण।

प्रस्तावना

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक नजरियों से हिन्दी भूखण्ड में पाँच प्राकृत थीं— अपभ्रंश, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस। इन्हीं प्राकृतों से पाँच अपभ्रंशों और फिर उनसे हिन्दी की पाँच उपभाषाओं—राजस्थानी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी का विकास हुआ। कुमाउँनी बोली पहाड़ी उपभाषा की प्रमुख बोली हैं, जो उत्तराखण्ड के कुमाउँ क्षेत्र में काफी प्रचलित है, एवं जनभाषा के रूप में क्षेत्र का प्रतिनिधित्व भी करती हैं। यह एक विचारणीय तथ्य है कि जिस कुमाउँनी को हिन्दी की बोली होने का गौरव प्राप्त है और जिसका साहित्य 19वीं सदी से निरन्तर लिखा जा रहा है, एवं लोकसाहित्य कई दशकों से लोगों की कंठा में दन्तवेद, टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से अपनी स्थाई जकड़ बनाये हुये है, परन्तु फिर भी उस बोली के रचनाकारों को हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान नहीं मिल पाता है। डॉ. हरदेव बाहरी पहाड़ी हिन्दी के सन्दर्भ में लिखते हुये कहते हैं 'पहाड़ी हिन्दी की कोई साहित्यिक परम्परा नहीं है। अतः इसे उपभाषा कहने में भी संकोच होता है' (हिन्दी भाषा, पृष्ठ-172)

वहीं सर् जार्ज ग्रियर्सन गुमानी पंत जी (सन् 1790-1846) को कुमाउँनी हिन्दी का पहला कवि मानते हैं। कुमाउँनी लोकसाहित्य एवं साहित्य हिन्दी के गुप्त आभूषणों की भांति है जो स्वयं अधकार में रहकर हिन्दी की चमक बढ़ाने हेतु निरंतर अथक प्रयास कर रहे हैं। ये अवश्य सत्य है कि कुमाउँनी का अभिजात्य साहित्य हिन्दी की अन्य बोलियों के साहित्य की तरह इतना व्यापक नहीं है, परन्तु जिन कठिन एवं दुर्गम परिस्थितियों में इस साहित्य को लिखा और संरक्षित किया गया, वो स्वयं में अन्य बोलियों एवं भाषाओं के लिये प्रेरणास्रोत हैं।

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल अपने चरम स्तर पर था, और

कुमाउँनी साहित्य का आरंभिक काल शुरू होने ही वाला था। जहाँ एक ओर रीतिकालीन कवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिये प्रेम किडाओं की सुन्दर कल्पनायें भरने के साथ-साथ अभिसारिका आदि कुछ नायिकाओं का वर्णन करते हुये लिख रहे थे—

आवें हँसी मोहिं देखत लालन, भाल में दीन्हीं महावर घोरी।

एते बड़े ब्रजमंडल में न मिली कहुँ माँगेहु रंचक रोरी।।

(बेनी प्रवीन)

अभिसारिका वर्णन देखियें—

रैन पाई चाँदनी फटक सी चटक रूख, सुख

पायो पीतम प्रबीन बेनि धनि है।

बैन पाई सारिका पढ़न लागी कारिका, सो आई

अभिसारिका कि चारु चितांमनि है।

वहीं दूसरी ओर दुर्गम कुमाउँ में बैठे गुमानी पंत जी अंग्रेजों के द्वारा किये जा रहे अत्याचारों का खुला विरोध कर जनता में विद्रोह की क्रांति लाने का प्रयत्न करते हुये कुमाउँनी और खड़ी बोली हिन्दी दोनों में अपनी सुंदर, सभ्य रचनाओं को रचने हेतु कलम चला रहे थे।

छोटे पे पोशाक बड़े पे ना धोती ना टोपी है,

कहै गुमानी सुन ले बानी होनी है सो होती है।

अंग्रेज के राज भरे में लोहा महंगा सोने से।

दौलत खींची दुनिया की सो पानी पीवे दोने से।

(गुमानी पंत- 1816)

विलायत से चला फिरंगी पहले पहुँचा कलकत्ते।
अजब टोप बन्नाती कुर्ती ना कपड़े ना कुछ लते
सारा हिन्दुस्तान किया सर बिना लड़ाई कर फते
कहत गुमानी कलयुग ने यो सुब्बा भेजा अलबत्ते
(गुमानी पंत- 1816)

गुमानी संस्कृत के प्रख्यात विद्वान थे। परन्तु उन्हें अपनी लोकभाषा से भी उतना ही प्रेम था जितना संस्कृत से था। गुमानी इस बात से भली भाँति परिचित रहे होंगे कि कुमाऊँ में साहित्य का सृजन अधिकांश मौखिक रूप में ही किया जाता है। जिसे वहाँ की आम जनता लोकसाहित्य के रूप में जानती है। यही कारण रहा होगा कि गुमानी ने अपनी रचनाएँ कुमाऊँनी में लिखी। जिससे लोगों को वो मुँह जुबानी याद रह सकें एवं साथ ही आने वाली पीढ़ी तक भी ये रचनाएँ सुरक्षित गति कर सकें और समाज के परिनिष्ठित सुशिक्षित वर्ग के लिए गुमानी के द्वारा खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग किया गया। जिससे साहित्य का प्रचार हर वर्ग में हो सके चाहे वो अनपढ़ जनता हो या पढ़ा लिखा शासक वर्ग। ये तथ्य अवश्य ही विचारणीय है कि जिस गुमानी को हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का पहला कवि होने का गौरव प्राप्त हो सकता था, उस गुमानी को हिंदी साहित्य के चर्चित इतिहास के ग्रंथों में स्थान तक नहीं दिया गया और ये कहना भी गलत नहीं होगा कि कुमाऊँ के विस्तृत क्षेत्र (चम्पावत, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, बागेश्वर, उधम सिंह नगर, नैनीताल) में अभिजात्य साहित्य की क्रांति लाने वाले गुमानी को हिंदी साहित्य से पृथक और उपेक्षित रखा गया।

वनै वनै काफल किलमड़ी छ
वाड़ा मुड़ि कोमल काकड़ो छ
गोठन में गोरु लैण बाखड़ो छ
थातिन में है उत्तम उपरड़ो छ
(गुमानी पंत, कुमाऊँनी कविता)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्वारा साहित्य के इतिहास की परिभाषा देते हुए लिखा गया है 'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है। तब यह निश्चित है की जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्ही चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-21) गुमानी के द्वारा उस दौर में चल रहे सबसे ज्वलित मुद्दे को उठाया गया था। यह वहीं मुद्दा था जो आधुनिक काल के प्रारम्भिक कवियों की कृतियों के लिए नीवं बन कर उभरा। यह वही विचारधारा थी जो जनता की चित्तवृत्तियों को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य बैटाने की कोशिश कर रही थी। ऐसा नहीं है की आचार्य शुक्ल गुमानी से अपरिचित रहे होंगे क्योंकि उनके द्वारा अल्मोड़ा अखबार का नाम अपनी पुस्तक में लिखा गया है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-365)

यह वहीं अल्मोड़ा अखबार है, जो गुमानी की कविताओं को उस दौर में संग्रहित कर रहा था। परन्तु गुमानी को हिंदी साहित्य से उपेक्षित रखने के ठोस कारण आज भी तर्कहीन और अनसुलझे ही दिखते हैं।

इस प्रकार ये अवश्य कहा जा सकता है कि बाहरी जी का वो कथन केवल शोध की अल्पता को ही दर्शाता है। इसे भी झुठलाया नहीं जा सकता की कुमाऊँनी के साहित्य में प्रचुरता और गतिशीलता की कमी रही है, परन्तु दो सौ वर्ष से अधिक के साहित्य को केवल 'ये कोई साहित्यिक परम्परा नहीं है' कहकर

अधिक वर्षों तक उपेक्षित नहीं रखा जा सकता है। अगर उपेक्षता का मानक यहीं है तो खड़ी बोली हिंदी जो खुसरो के बाद समाज में दब गई और गुमानी के समय फिर से नई ऊर्जा के साथ प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेणना की भाषा बन कर उभरी उसकी साहित्यिक परम्परा पर विचार करना भी आवश्यक ठहरता है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो, ये भाषाओं के लोकतंत्र में बोलियों के संग अन्याय ही होगा और इस अन्याय की शिकार बोलियाँ अधिक वर्षों तक सशक्तता से भाषा का प्रचार भी नहीं कर सकेंगी। जो किसी भी भाषा के विकास के लिये केवल बांधा का कारण है। गुमानी पंत के द्वारा जिस कुमाऊँनी अभिजात्य साहित्य की नीवं कुमाऊँ मंडल में रखी गयी थी, उसे आगे बढ़ाने का कार्य उन्हीं के समकालीन कवि कृष्णा पाण्डेय (1800-1850) जी के द्वारा किया गया जिस दौर में हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवि भोग विलासता का जीवन व्यतीत कर रहे थे उसी दौर में कुमाऊँ के कृष्णा पाण्डेय जैसे कवि अंग्रेजी सत्ता का खुला विरोध कर लोकभाषा में जनता को जागरूक करने का कार्य भी कर रहे थे।

फिरंगी राजा कलि अवतार,
आपन पाप लै औरन मार। (3)
फिरंगी राजे की अकल देख,
कुड़ि बाडि ब्याचि बेर इस्तब लेख। (4)
पिटला को टुकड़ा को चपड़ास कियो,
मुल्क को सुनो रूपों लूटि लूटि लियो। (5)
(कृष्णा पाण्डेय)

एक ओर हिंदी साहित्य में नायिका भेद एवं नखशिख वर्णन कर स्त्री के चरित्र एवं उसकी सुंदरता को समझने की कोशिश जारी थी। वहीं कुमाऊँनी भाषा में नयनसुख पाण्डेय पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर कविता लिख रहे थे। उसके बाद गौरीदत्त पाण्डेय 'गौर्दा' के द्वारा गाँधी दर्शन पर आधारित कवितायें लिखी गयी ये परम्परा यहीं खत्म नहीं हुई। शिरोमणि पाठक, श्यामचरण दत्त पाण्डेय, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी, जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डेय, जयंती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गा पाण्डेय, दीनानाथ पंत, लक्ष्मी देवी आदि बीसवीं शताब्दी तक कवितायें लिखते रहे। चारुदत्त पाण्डेय बीसवीं शताब्दी के पहले कवि माने जाते हैं। कुमाऊँनी के परिनिष्ठित साहित्य को अब गति मिल चुकी थी, ये साहित्य अपनों त्वरणता के साथ अपनी विरासत को लिए निरंतर आगे बढ़ता जा रहा था। शेरसिंह बिष्ट 'अनपढ़' इस समय के प्रख्यात रचनाकार हैं। उनके साथ साथ बंशीधर पाठक 'जिज्ञासु', देवकी महारा, गोपाल दत्त भट्ट, किशन सिंह बिष्ट, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, दीपक जोशी, बहादुर बोहरा, दीपक कार्की, दामोदर जोशी, देवकी नंदन कांडपाल, गिरीश तिवारी 'गिर्दा' (1945-2010) आदि परिनिष्ठित कुमाऊँनी साहित्य के प्रणयन हैं।

छीनी न सकनी कभै सरकार बन्देमातरम्
हम गरीबन को छ यो गलहार बन्देमातरम्।
हम त वी छौं जोकि हुण चौँछ हमन ये बखत पर,
आज कूणा लागि रछ संसार बन्देमातरम्।
(गिरीश तिवारी 'गिर्दा')

लोकसाहित्य एवं साहित्य में अंतर

प्रोफेसर देव सिंह पोखरिया ने लोकसाहित्य के सम्बन्ध में अपना अभिमत करते हुए लिखा है 'लोकमानव समाज की वह सामूहिक इकाई है, जो अपने नैसर्गिक और स्वाभाविक रूप में अभिजात्य बंधनो तथा परम्पराओं से रहित पांडित्य, चमत्कार, तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रयेता है। और

इसी का साहित्य लोक साहित्य कहलाता है वास्तव में साहित्य को 'शब्द एवं विचार' लोकसाहित्य से ही विरासत में मिले हैं। लोकजीवन की भावभूमि में उगे साहित्य को लोकसाहित्य की संज्ञा दी जा सकती है। कुमाऊँ का अधिकांश क्षेत्र पहाड़ पर बसा हुआ है। जहाँ मूलतः उन संसाधनों एवं तकनीक का आभाव है जिससे लोकसाहित्य लिपिबद्ध हो सके और परिनिष्ठित साहित्य का स्वरूप प्रदान कर सके। आज भी कुमाऊँ के ऐसे बहुत से जनपद हैं जहाँ साहित्य को संरक्षित करने वाला प्रकाशक मौजूद नहीं है। कुमाऊँ का इतिहास बताता है की कुमाऊँ में ११वीं शदी से ही अभिजात्य साहित्य का निरूपण होने लग गया था और तामपत्रों में संस्कृत मिश्रित कुमाउनी के शब्दों को देखा जा सकता है। तामपत्रों में लिखने की कला की शुरुवात कत्यूरी शासकों से हुई परन्तु अधिकांश तामपत्र चंद राजवंश के समय के ही मौजूद मिलते हैं। विद्वानों में ये मतभेद का विषय है कि लोकसाहित्य को साहित्य कहा जा सकता है नहीं। इसी मतभेद का अंत करते हुये डॉ. सत्येंद्र कहते हैं 'साहित्य के इस विस्तृत अर्थ में आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति मानी जाएगी जो लिखित हो या मौखिक हो, किन्तु जो व्यवसाय क्षेत्र की न हो' कुमाउनी लोकसाहित्य की गाथिक परम्परा में परम्परित कई विधाओं के रचनाकारों का कुछ पता नहीं है इन रचनाओं के मूल जन्मदाता कौन थे ? किस व्यक्ति ने इन गाथाओं को गाना शुरु किया ? इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। कुमाउनी मुहावरों एवं कहावतों के रूप में भी यही बात सामने आती है। ये लोकसाहित्य अपनी मौलिकता के साथ साथ पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता गया एवं संसाधन मिलते ही इसने अभिजात्य साहित्य का रूप ग्रहण कर लिया।

कुमाउनी लोकसाहित्य एवं साहित्य की विशेषता

कुमाऊनी लोकसाहित्य एवं साहित्य के पीछे ऐतिहासिक घटनाक्रम निहित है। 'रमोला' कुमाउनी में लिखा लोक महाकाव्य है तो 'राजुला और मालूशाही' की अमर प्रेमकथा कुमाउनी में लिखे साहित्य के मर्म को समझने में मदद करती है। जागर में गाये जाने वाले गीत कुमाउनी लोक साहित्य एवं साहित्य के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं। जागर में विभिन्न घटनाओं का उल्लेख करते हुए चरित्रों को आधार बनाया जाता है, जो आज के समय भी तत्कालीन परिस्थितियों की स्मृति कराकर अवतार परिणत हो जाते हैं कुमाऊँ के विभिन्न लोकदेवता इन लोकगाथाओं में समाविष्ट हैं। जागन के गीत कई अनपढ़ लोग भी गाते हैं जिन्हें ठीक से अपना नाम भी नहीं लिखना आता है। इसका कारण यही है कि ये गीत उन्होंने कई शताब्दियों से चली आ रही वाचिक परम्परा के माध्यम से अपने भीतर समाहित कर लिये हैं।

हिंदी साहित्य में 'खंजन' पक्षी का बहुत उल्लेख मिलता है, जबकि कुमाउनी साहित्य 'न्यौली' पक्षी को कविता का पात्र बना कर उसके माध्यम से विरह कि वेदना पाठकों में जागृत करने का प्रयत्न करता है। न्यौली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है ऐसी मान्यता है की न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मन्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है परन्तु यहां न्यौली का उल्लेख करने का प्रमुख कारण शब्द की संवेदना को समझना है। हिंदी कुमाउनी के इस शब्द को समाहित कर अपने शब्द-कोश को और अधिक विस्तृत एवं व्यापक कर सकती है। न्यौली का अर्थ 'नई' या 'नए' से है इस शब्द का प्रयोग कुमाउनी साहित्य में तब देखने को मिलता है जब नई नवेली दुल्हन का वर्णन करना हो। न्यौली कुमाऊँ में इतना प्रख्यात है कि इस पक्षी के नाम पर ही एक लोकगायन पद्धति लोक के द्वारा विकसित कर ली गयी। न्यौली के गायन पद्धति में प्रकृति ऋतुएँ, नायिका के नख भेद आदि वर्णन निहित

है। छंद शास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद माना जाता है। हिंदी साहित्य में कवियों के द्वारा नायिका का रूप सौंदर्य का वर्णन 'दिने दिने सा वृद्धे शुक्ल पक्षी यथा शशि' के द्वारा किया जाता है परन्तु राजुला मालूशाही गाथा में राजुला के शैशवकाल से यौवन तक का वर्णन गाथाकार ने अपनी निजी ज्ञान के आधार पर किया है।

द्विगै दिन में हो छोरी चार दिन जसी
नावान बखत छोरी छै महैणा कसी
महेणन में हुई गैछ बरसन कसी
चैत की केरुवा कसी बणण बगै छ
भदो की भंगाल कसि बडण बगै छ
पूस की पालड कसी औ छोरी रजुली
ओ छोरी रजुली ऐसी जन्मी रे छ
(मालूशाही द्वितीय श्रुति)

अर्थ- दो दिन में ही वो लड़की चार दिन के सामान हो गई। नामकरण के समय वो छह मास की हो गयी। महीनों में ही वर्षों के सामान वृद्धि पा गयी है। चैत्र मास के कैरुवा के समान बढ़ने लगी है। भादो की भंगाल जैसी उगती हुई पूस मास के पालक जैसी है 'राजुली'। राजाओं को वो मूल नक्षत्रों के सामान खटक रही है। इसका सौंदर्य राजाओं के लिए चुनौती बन गया है। इसका सामना देवतागण स्वर्गवासी होने के कारण नहीं कर सकते हैं।

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के शुरुवाती समय तक मीरा को छोड़ कोई भी स्त्री प्रमुख रचनाकार के रूप में नहीं उभर पाई। मीरा के द्वारा भी जो रचनायें लिखी गयी उसमें सामाजिक विद्रोह फुट-फुट कर भरा हुआ है। वहीं कुमाऊँ क्षेत्र में स्त्रियों के लिए लोकसाहित्य ने एक नया द्वार खोल दिया था। एक ऐसा द्वार जिससे मूलतः स्त्रियाँ ही गुजरती थीं। इस परम्परा को 'फाग' परम्परा का नाम दिया गया। मनुष्य के गर्भाधन, नामकरण, यज्ञोपित, चूड़ाकर्म विवाह आदि के समय 'फाग' गाया जाता था। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गिदार' कहा जाता था। ये 'फाग' जाने कितने सालों से वाचिक परम्परा के माध्यम से समाज के प्रत्येक हिस्से में, एवं प्रत्येक स्थिति में प्रपफुलित हो रहा था। परन्तु संसाधनों के आभाव में 'फाग' गीत जिनमें साहित्य कि गंध थी, अभिजात्य नहीं बन पाए। 'फाग' गीत ग्राम्य गीत जैसे ही है इन 'फाग' गीतों के महत्त्व को समझने के लिए रामनरेश त्रिपाठी जी के विचारों को समझना आवश्यक है। वह कहते हैं- 'ग्रामगीत प्रकृति के उद्धार है इसमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। इन गीतों में सभी मनुष्यों के हृदय नामक आसन में बैठ प्रकृति गान करती है और यही प्रकृति गान ग्राम्य गीत बन जाते हैं।

कुमाऊँ प्रकृति के काफी समीप बसा हुआ है। जिसके कारण इस क्षेत्र की भाषा और काव्य दोनों ही प्रकृति से मिलने को तत्पर नजर आते हैं। राजुला मालूशाही गाथा में जब गंगा के गर्भ से राजुला का प्रादुर्भाव हुआ तब तत्कालीन हिमालय पर्वत की छटा निखर उठी ये शब्द चित्र देखिये-

हिमाल बादों फाटो री री री
पंचाचूली चाँदी जस चमकीरी
नंदा देवी की घुडिटी री री री तली खिसकन लगी रौ
गौरिगंगा पानी बड़ौ री री री उजालो चमकी रौ
(मालूशाही प्रथम कृति)

कुमाउनी हिन्दी समावेशीकरण

कुमाऊँ के वो ग्रामीण क्षेत्र जहाँ पानी कम है वहाँ अधिकांश

तालाब बनाये जाते हैं। गर्मियों में इन तालाबों में भैंसों को स्नान कराया जाता है। इन पोखरों को भैंसीखाल या भैंसीपोखर कहते हैं। हिंदी में कुमाऊनी के इन शब्दों को स्थान दिया जा सकता है।

जैसे: तालाब में भैंस स्नान कर रहे हैं।
भैंसीखाल में भैंस स्नान कर रहे हैं।

पहला वाक्य पढ़ने से चित्त में यही भाव प्रकट हो रहा है कि भैंसों के स्नान करने के कारण तालाब गंदा हो रहा है। जबकि दूसरा वाक्य इस शंका का निदान कर रहा है और बता रहा है कि वो तालाब विशेषतः भैंसों के स्नान करने के प्रायोजन से ही तैयार किया गया है। इसलिए भैंसों के प्रति पहले जो घृणा का भाव उत्पन्न हो रहा था, सम्भवतः पाठक अब उसे प्रकृति के दुर्गम चित्रों से जोड़ने लगेगा।

प्रकृति में सुगंध और दुर्गंध दोनों ही उपस्थित हैं। कुमाऊनी बोली कि यह विशेषता रही है यहाँ प्रत्येक गंध का एक विशेष नाम है, और ये नाम गंध को सीधे स्पष्ट करता है।

मनुष्य के बगल से आने वाली गंध कखैन
सड़ी हुई चीजों से उठती हुई गंध सडैन
लकड़ी की गंध कटैन
बाल नाखून या मुर्दा जलाने से उठती वाली गंध किहडैन
खट्टेपन की गंध खटैन
पुराने चावलों से आने वाली गंध खौकेन
सुखी मिर्च जलने से आने वाली गंध खौसेन
मूली या खराब हुई दही से उठने वाली गंध गरैन
आदमी के मल की गंध गुहेन
गाय भैंस के मूत्र कि गंध गौतेन
कपड़ा जलने कि गंध छतरैन
सीलन की गंध स्यादेन
गंदे कपड़ों से उठने वाली गंध सुमरैन
खून कि गंध लुवैन
मछली से आने वाली गंध मछैन
खटमल मारने से आने वाली गंध भुवैन
धूप कि सुगंध धुपैन
सरसो राई के तेल की गंध पिरैन
बासी भोजन की गंध बसैन
भुटने पर आने वाली गंध भुटेन
खीरें आदि का कड़वापन तितेन
लोहे की गंध लोहरेन
तम्बाकू की गंध तमकैन
मनुष्य के मूत्र की गंध चुरैन
मुर्दे कि गंध मडैन

(ओ इजा, उपन्यास, पृष्ठ 34-35)

‘काटी खांझ भागी गाड को सुसाट’
(मालूशाही द्वितीय श्रुति)

हिंदी में ‘सरसराहट’ शब्द का उपयोग मुख्यतः नदियों के बहने की ध्वनि को शब्दात्मक करने के लिए किया जाता है। ठीक वैसे ही कुमाऊनी लोकसाहित्य से पनपा ‘सुसाट’ शब्द प्रयोग ‘गाड’ (छोटी नदियों) के बहने की ध्वनि को शब्दात्मक करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार ये कहा जा सकता है कि हिंदी सुसाट जैसे ध्वन्यात्मक शब्दों को अपने क्षेत्र में स्थान दे सकती है जिससे भाषा कि चंचलता और अधिक चंचल हो सके।

निष्कर्ष

हिंदी कि उपभाषाएँ हिंदी को मजबूत एवं सुदृढ़ करती हैं, और इन उपभाषाओं की बोलिया हिंदी कि सबसे बड़ी प्रचारक सिद्ध हुई हैं। कुमाऊनी जो कि हिंदी की पहाड़ी उपभाषा की एक प्रमुख बोली है। और जिसका परिनिष्ठित साहित्य परिमार्जित होकर 19वीं सदी तक देश भर में फैल गया था। परन्तु फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि कुमाऊं के उन उत्तम कवियों पर नहीं पड़ती जिन्होंने भोग विलासता का जीवन त्याग देश में आजादी की सोच को कुमाऊं के विस्तृत क्षेत्र में फैलाया। कुमाऊनी बोली चीनी, तिब्बती और नेपाली भाषा से प्रभावित रही है, परन्तु ये प्रभाव भी इतना प्रभावी नहीं था कि कुमाऊनी का हिंदी प्रेम कम कर सके। कुमाऊनी रचनाकारों ने कुमाऊनी के साथ साथ खड़ी बोली हिंदी में भी रचनायें लिखी कुमाऊनी और नेपाली के प्रथम कवि गुमानी पंत जी का देहांत भारतेन्दु के जन्म से ४ वर्ष पहले हो गया था पंत जी ने 1816 के पहले ही खड़ी बोली में रचनायें लिखना शुरू कर दिया था और ऐसा नहीं था कि ये रचनायें कालक्रम से भटकी हुई थीं। ये रचनायें तत्कालीन देश के सबसे ज्वलित मुद्दे आजादी को लेकर लिखी गयी थी। परन्तु उसके उपरांत भी पंत जी को साहित्य के चर्चित इतिहास ग्रंथों में स्थान नहीं मिल पाता है। जिस कारण हिंदी पट्टी के एक बड़े भूभाग की चित्त प्रवृत्ति दबी की दबी ही रह जाती है, और कुमाऊनी के विकास की गति भी चरम गति को प्राप्त नहीं कर पाती। इसके अतिरिक्त कुमाऊनी बोली के पास वो शब्द सम्पदा मौजूद है, जो हिंदी भाषा के उत्थान में मदद कर सकती है हिंदी के द्वारा विभिन्न विदेशी भाषा के शब्दों को सहर्षता स्वीकार किया गया है तो ऐसे में हिंदी से ये उम्मीद अवश्य लगाई जा सकती है कि वो कुमाऊनी की शब्द सम्पदा को गृहीत कर अवश्य ही अपनी बोली को सम्मानित स्थान देगी एवं कुमाऊनी के उपेक्षित कवियों को भी साहित्य के इतिहास में पद शोभित करेगी।

संदर्भ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य राम चंद्र शुक्ल
2. हिंदी भाषा, डॉ हरदेव बाहरी पृष्ठ. १७१-१७२
3. कुमाऊं का इतिहास, बटरीदत्त पांडेय –अल्मोड़ा बुक डिपो
4. अल्मोड़ा अखबार
5. लोक संस्कृति के विविध आयाम मध्य हिमालय के संदर्भ में, देव सिंह पोखरिया, पृष्ठ, २ ५
6. हिंदी साहित्य कोश, डा धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ. ६८२
7. कुमाऊनी भाषा और साहित्य का उद्भव और विकास, डॉ शेर सिंह बिष्ट पृष्ठ. १०६-११५
8. कुमाऊनी भाषा साहित्य एवं संस्कृति, डॉ देवसिंह पोखरिया
9. कुमाऊनी का लोकसाहित्य त्रिलोचन पांडेय पृष्ठ. १६०-२००
10. कुमाऊनी भाषा, डॉ केशव दत्त रुवाली
11. भाषा और संस्कृति चक्रधर कर्नाटक पृष्ठ. १ ३-२००४
12. ओ इजा, शम्भूदत्त सती, पृष्ठ ३४-३५
13. <http://kavitakosh.org>
14. <http://www.merapahadforum.com>